N. S. S. HINDU COLLEGE PERUNNA
P. G. AND RESEARCH DEPARTMENT OF HINDI

CERTIFICATE

This is to certify that is a bonafide record of Research work carried out by N. KALA under my supervision for PhD and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Prof. Dr. P. K. Ajithkumar
Supervising

Professor
Department of Hindi
N. S. S. Hindu College, Perunna
Changanassery

DECLARATION

I hereby declare that the synopsis of the thesis entitled "SAMAKALEEN HINDI NATAKOM MEIN DALIT CHETANA" has not previously formed the basis of any degree, associateship, fellowship or other similar title recognition.

N. Kala
Research Scholar

P. G. & Research Department of Hindi
N. S. S. Hindu College, Perunna
Changanassery

पुरोवाक

रचना दरअसल एक संवाद है, रचनाकार और आम आदमी के बीच का सार्थक संवाद । रचनाकार अपनी रचना के जरिए विद्रोह करता है, अपने समय की असंगतियां के खिलाए, विद्रोह उसकी अस्मिता का प्रमाण है । इस दृष्टि से हर सचेत सहित्यकार विद्रोह के जरिए अपने समय की असंगतियों के खिलाए असहमति प्रकट करता है । समकालीन दलित साहित्य सच्चे अर्थ में विद्रोह का साहित्य है, दलित समाज केलिए अस्मिता केलिए किये गये संघर्षों का दस्तावेज भी ।

दलित अपनी हैसियत पर सचेत हो उठे और उसने पाया कि उनका जीवन मानवोचित नहीं उन्हें वैसे जीने का अधिकार है पर कुछ ऐसी शक्तियाँ समाज में वर्तमान हैं जी उन्हें मानवोचित जीवन जीने से वंचित कर रही हैं । उन शक्तियों की उन्होंने पहचान लिया, उनके खिलाए संघर्ष किया, अपनी अस्मिता को बनाए रखने तथा मानवोचित जीवन जीने के अधिकार की माँग की । दलित साहित्य दरअसल दलितों की आत्मपहचान और लंबे संघर्षों का जीवन इतिहास ही है । इस साहित्य के अध्ययन का मतलब वास्तव में दलित जीवन के अंतरंग यथार्थों का अध्ययन ही है ।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में दलित साहित्य वर्तमान युग की अनिवार्य आवश्यकता है । दलित साहित्य मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं की यथार्थवादी अथित्यकित है । समाज के पीड़ित, उपोक्षित निन्दित और रौधे गये शोषित जन साधारण के प्रति मानवीय संवेदना से युक्त साहित्य दलित साहित्य है । दलित साहित्य के अर्न्तगत अधिक मात्रा में क्रान्ति की आवाज़ ही गूँज उठी है । शताब्दियों के बीच जीने पर भी भारत में एक वर्ग सामाजिक, मानसिक, आर्थिक शोषण सहते हुए आ रहा है । इस वर्ग में ज़रा सी चेतना आयी तो शोषण और उत्पीडन के विरुध्द विस्पोट हुआ । दलित साहित्य उसका ही परिणाम है ।

जन चेतना के विकास और जनरुचि के परिमार्जन में नाटकों का अत्यन्त प्राचीनकाल से महत्व रहा है । नाटक जनता के बीच खेले जाते थे और जन जीवन से उनका सीधा संपर्क था । समाज के हाशिए पर धकेल दी गयी जनता को मुख्य धारा की ओर ले जाने में हर समय नाटककार प्रयत्नरत रहे हैं । इसका प्रभाव यह हुआ कि सदियों से पिछडे रहे दलित को उभारने का अवसर मिला । समकालीन दलित नाटकों में इसका लेखा-जोखा है और इन में भारतीय समाज की कटु आलोचना

भी है । समकालीन हिन्दी नाटकों में दलित चेतना की जो अभिव्यक्ति हुई है उसका अभी तक विस्तार से अध्ययन नहीं हुआ है । इसलिए मैंने समकालीन हिन्दी नाटकों में अभित्यक्त दलित चेतना की अपने अध्ययन केलिए चुना । मेरे शोध प्रबन्ध का शीर्षक है "समकालीन हिन्दी नाटकों में दलित चेतना " । समकालीन दलित नाटकों का वस्तुगत और शिल्पगत अध्ययन ही इस शोध-प्रबधं का लक्ष्य रहा है । अध्ययन की सुविधा केलिए इस की पाँच अध्ययों में विभाजित किया गया है, जी इस प्रकार हैं -

पहला अध्याय	:	दलित चेतना : एक विवेचन
दूसरा अध्याय	:	हिन्दी नाटक और दलित चेतना : एक सर्वेक्षण
तीसरा अध्याय	:	समकालीन हिन्दी नाटकों में अभिव्यक्त दलित चेतना : सामाजिक - धार्मिक सन्दर्भ
चौथा अध्याय	:	समकालीन नाटकों में अभिव्यक्त दलित चेतना राजनीतिक - आर्थिक सन्दर्भ
पाँचवाँ अध्याय	:	समकालीन दलित नाटक : शिल्पपक्ष

अंत में उपसंहार भी दिया गया है ।

पहला अध्याय

दलित चेतना : एक विवेचन

इस अध्याय में दलित शब्द के अर्थ और विचारकों के दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करते हुए दलित साहित्य और दलित चेतना से जुडे हुए विभिन्न मुद्दों पर विचार किया गया है । दलित साहित्य में "दलित चेतना" संघर्ष से नाता रखनेवाली क्रान्तिकारी मानसिकता है । दलित चेतना मनुष्य को केन्द्र मानकर जाति - व्यवस्था के विरुध्द करनेवाली चेतना है । यह चेतना दलित साहित्य की बुनियाद है । इस चेतना के कारण ही दलित साहित्य की अलगाव रेखांकित होती है । समकालीन हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधाओं में अभिव्यक्त दलित चेतना की चर्चा भी इस अध्याय में की गयी है ।

दलित समाज में भारतीय सामाजिक जीवन की मुख्यधारा के अंदर एक लंबी लडाई लडी है । वे बार-बार गिरे है फिर उठे हैं । उन्होंने अपनी तथा अपने समाज की समस्याओं को लेकर संघर्ष किया है, तब जाकर उन्हें हाशिए के केन्द्र में थोडी सी जगह मिली है । पर यह जगह इतनी नहीं हैं कि वे पाव पसारकर बैठ सके । हिन्दी साहित्य में आलोचकों की एक लंबी कतार दलित साहित्य को हिन्दी की एक नई लेखकों की जो नई पुस्तकें है तथा पुराने लेखकों ने जो नई पुस्तकें लिखी हैं उन्हें देखकर साफ पता चलता है कि दलित साहित्य में सामाजिक संघर्ष और पहचान की प्रक्रिया तीव्र हुई है तथा इससे लेखकों की स्पनात्मक ऊर्जा को बल मिला है । यह समकालीन हिन्दी दलित साहित्य जगत केलिए एक अच्छा संकेत है ।

आत्मविश्लेषण, आस्मिता की तलाश जीवन-मूल्यों की खोज, मानवीय सरोकारों की पड़ताल आदि दलित चेतना का मूलाधार है ।

दूसरा अध्याय

हिन्दी नाटक में दलित चेतना की अभिव्यक्ति : एक सर्वेक्षण

आधुनिक हिन्दी साहित्य में दलित चेतना की अभिव्यक्ति की वास्तविक शुरुआत बीसतों सदी के आठवे-नवें दशक में ही हूई थी । किन्तु दलितों के नरकीय जीवन को आठवे दशक के पहले के साहित्य में भी प्रस्तुत किया गया था । प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, अमृतलाल नागर ने अपनी रचनाओं में दलितों को वाणी देने की कोशिश को । दलित समाज की समस्याओं को आधार बनाकर हिन्दी में कई नाटक लिखे गये थे, जो दलित चेतना की दृष्टी से महत्वपूर्ण नहीं थी, लेकिन दलितों के यातनापूर्ण जीवन और उनके दवारा भोगी जानेवाली स्थितियों के दर्दनाक चित्र उनके नाटकों में उपलब्ध है । इस दृष्टी से हरिकृष्ण प्रेमी का 'शपथ' रमेश मेहता का 'रोटी और बेटी', लक्ष्मीनारायण लाल के एक सत्यहरिश्चन्द्र, गंगामाटी, 'एवं गरुडध्वज', जगदीशचन्द्र, माथूर का 'पहलाराजा' मन्नूभण्डारी का 'महाभोज' सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के 'बकरी' एवं 'गरीबी' हटाओं, कुसुम कुमार के 'सुनो शेफाली' एवं 'रावणलीला' जगदीशगुप्त का 'शंबूक', शंकरशेष का 'एक ओर द्रोणाचार्य', नागबोडस का दलित स्वदेश दीपक का 'कोर्ट मशिल' आदि प्राचीन जीवन और उनकी समस्याओं पर केन्द्रित महत्वपूर्ण नाटक है ।

दलित चेतना की सच्ची और सही अभिव्यक्ति समकालीन युग में दलितों द्वारा रचित नाटकों में ही मिलती है । पहले दलितों ने अपने विचारों की प्रस्तुति लोकनाटकों में की दलितों के बीच का सशक्त नाटककार माताप्रसाद है, जिनको दलित नाटक के 'पयनीयर के रूप में देखा जाता है । धर्म के नाम धोका, अछूत का बेटा, वीराँगना झलकारी बाई ऊदादेवी पासी, प्रतिशोध, अन्तहीन बेडियाँ, तड़प मुक्ति की, धर्मपरिवर्तन आदि उनको प्रमुख नाट्य रचनाएँ है । मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, एन. आर. सागर, कर्मशील भारती, मनोज कैन शीलबोधी अनिता न्तारती जैसे नाटककारों की एक लबी परंपरा है जो दलित समाज के ही हैं । इन सब की नाट्यरचनाओं का ऐतिहासिक सर्वेक्षण इस अध्याय में किया गया है ।

तीसरा अध्याय

समकालीन नाटकों में दलित चेतना : सामाजिक एवं धार्मिक सन्दर्भ -

इस अध्याय में यह तेखने का प्रयास किया गया है कि दलित चेतना के आधार पर समकालीन दौर में रचित हिन्दी नाटकों का सामाजिक धार्मिक परिपार्ख क्या है । दलितों को जाति के नाम पर जिस प्रकार का शोषण - अपमान झेलना पड़ता है उसे ही 'कोर्टमर्शल', 'दलित', 'सुनो रोफाली', 'धर्म परिवर्त' 'तपट मुक्ति की' 'अधूत का बेटा', छू नहीं सकता, 'धर्म के नाम पर धोखा' 'अन्तहीन बेडियाँ' आदि नाटकों में प्रस्तुत किया गया है । इन नाटकों में दलितों की बहुविध समस्याओं - मुद्दों को बडी सजीवता के साथ उभारा गया है ।

परंपरागत शोषण तंत्र में पिसते दलित के सामने नई चुनौतियाँ बिजली के समान टूट पड़ी है । नव उपनिवेशवाद भूमण्डलीकरण और साँप्रदायिकता के समकालीन दौट में दलितों का जीवन दुष्कर बना है । इस दौर में भी "जाति" सबसे बड़ी समस्या के रूप में कायम है । इसके कारण दलितों का अपमान शोषण अत्याचार और उत्पीड़न हो रहा है । लक्ष्मीनारायण नाल, कुसुमकुमार, शंकरशेष, जगदीश गुप्त, नागबोइस, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि सवेदनशील नाटककारों ने संवेदना के तोर पर जाति के कारण होनेवाले शोषण - अत्याचार का जिग्र तो किया है किन्तु माता प्रसाद, मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकी, एन. आर. सागर, मनोज कैन, शीबोधी रघुवीर अरविन्द ने जैसे नाटककारों ने जिस ढंग से जाति की समस्या की चर्चा की है, वह संवेदना के तौर पर नहीं, यथार्थ अनुभव के तौर पर ज्यादा प्रामाणिक हैं । दलित समाज में व्याप्त अंधविश्वास का भडां फोड भी उपयुक्त नाटककारों ने किया है । ये दलित नाटक दलितों की सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक सभी प्रकार के शोषण, उत्पीडन और अन्याय के प्रति नकार तथा उससी मुक्ति का उद्घोष है । यह पंपरागत रुढ़ियों एवं आडम्बरों के खिलाफ एक मुहिन है जो सामाजिक प्रगति में बाधक है । ये ही सामाजिक जीवन को विषाक्त बनति है और ही शीषण एवं असमानता का पीषक है । इन सबका विश्लेषण ही चुनी हुए दलित नाटकों के आधार पर इस अध्याय में किया गया है ।

चौथा अध्याय

समकालीन दलित नाटक में अभिव्यक्त
दलित चेतना : राजनितिक आर्थिक सन्दर्भ -

दलित चेतनात्मक मूल्य, आक्रोश, चीख, वेदना, पीड़ा, चुभन घुटन, छटपटाहट और शोषण के दर्द को उसके वैविध्य के साथ समकालीन दलित नाटक में उकेरा गया है । आम दलित जनता को निरक्षरता और अज्ञानता का नाभ उठाकर जनता को धोखा देनेवाले तथाकाथित राचनीतिकों का चित्र सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के नाटक 'बकरी' में प्रस्तुत है तो उनके "गरीबी हटाओं" में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि दलितों की स्थिति राजाओं और ब्रिट्रीशों के प्रशासनकाल में गुलाम की है । चुनाव के समय में जमीन्दार द्वारा हुए दलितों के कृत्यों आम और आगजनी की घटना को किस तरह राजनीतिक अपनी शतरंजी चाल का मोहरा बनाया जाता है यही मन्नू भण्डारी के 'महाभोज' नाटक में दिखाया गया है । कुसुमकुमार का 'सुनोशेफाली' शीर्षक नाटक अपनी शख्सियत दिखानेवाली शेफाली की कथा पेरा करता है । शेफाली एख ऐसी नारी है जो समाज सेवा के बहाने अपना उल्लू सीधा करनेवाले तथाकथित समाजसेवियों एवं राजनितिज्ञों के सागने अपने को बलि चढ़ाने केलिए कतई तैयार नहीं है । दलित युवती शेफाली से अपने बेटे बकुल को शादी कराके दलितों का वोट बटोरना ब्रह्मण राजनेता दीक्षित की पोल ही नाटक में बुलती है । माता प्रसाद का "धर्म परिवर्तन" अंवेदकर के राजनीतिक कार्यकलापों को प्रस्तुत करता है । ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'दो चेहरे' में मज़दूर नेताओं के बहुरूपियेपन को बेनकाब किया गया है । समकालीन दलित नाटकों में दलितों के शीषण, अत्याचार उनके अर्थाभाव का भी चित्रण मिलता है । इस प्रकार देखा जा सकता है कि समकालीन दलित नाटको में राजनीतिक व आर्थिक यथार्थ की सच्ची अभिव्यक्ति मिलती है । इसका अध्ययन ही चौथे अध्याय का प्रतिपाद्यय है ।

पाचवाँ अध्याय

समकालीन दलित नाटक : शिल्प पक्ष

दलित चेतना भारतीय जाति व्यवस्था की कोख से या कहें कि अस्पृश्यता की दारुण वेदना से पैदा हुई है । यह सदियों से सताये हुए लोगों की पीडा की अभिव्यक्ति है लेकिन यह मूक अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, इस में अस्वीकार निवेध, विद्रोह और संघर्ष की आग भी है । इस में एक जाति - समूह के अनुभव की प्रामाणिकता है । उसकी अस्मिता की पीड़ा और ललकार है, कटुता है आक्रमकता है अस्वीकार है क्षोभ है सीधा तर्क है । दलित नाटकों में वैचारिकता ही प्रमुख है । दलितों के जीवन से जुडे हुए मुघों समस्याओं एवं महलुओं को उसके लायक कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण और संवाद के ज़रिए इन नाटकों में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है । दलित नाटकों की शिल्पगत विशेषताओं की चर्चा इस अध्याय में किया गया है ।

उपसंहार

संक्षेप में कहा जा एकता है कि हिन्दी नाटक में दलितों के जीवन के प्रति सहानुभूति अवश्य प्रकट की गई है । दलितों को समाज में समान अवसर प्राप्त नहीं हुआ था । वर्ण, जाति और आर्थिक स्थिति ही सब के आधार थे । इनके आधार पर जो भोद-भाव थे उनको मिटाए बिना समाज में समता स्थापित नहीं हो सकती थी । अतः नाटककारों ने सामाजिक विषमता को दूर करने केलिए लेखनी चलायी ताकि दलितों की स्थिति सुधार जाए ।